'लुगदी' साहित्य के अँधेरे-उजाले

प्रभात रंजन

"वेद प्रकाश शर्मा वह लेखक है जिसने 'इलेक्ट्रॉनिक मीडिया' के इस युग में उपन्यास-जगत का परचम गर्व से फहरा रखा है।"

(ट्विकः वेद प्रकाश शर्मा, तुलसी पॉकेट बुक्स, मेरठ)

हिन्दी में 'लोकप्रिय उपन्यास' कहते ही अंग्रेज़ी के 'पल्प फ़िक्शन' से अनूदित संज्ञा 'लुगदी साहित्य' का स्मरण हो आता है जो उस विधा का उपहास उड़ाता ही लगता है। बरसों गम्भीर-साहित्य के अध्ययन-शोध की अकादमिक 'अपब्रिंगिंग' ने अपने अन्दर यह हिचक भी भर दी है कि उस तरह के साहित्य पर बातचीत से बचना ही चाहिए, 'महान' साहित्य का अध्ययन-स्मरण ही करते रहना चाहिए; कि उसके अलावा भाषा का सारा का सारा लेखन उसी 'साहित्य' का भ्रष्ट रूप है — और लोकप्रिय उपन्यासों की विधा तो उसका भ्रष्टतम रूप है। बचपन में पढ़े गये इन्द्रजाल कॉमिक्स के पात्र फ़ैण्टम, जादूगर मैनड्रेक, बहादुर, 'राजन-इकबाल सीरीज़' (जिसके लेखक एस.सी. बेदी होते थे) आदि-आदि साहित्य का स्मरण हम बचपन के 'अपराधों' के तहत ही करते चले जाने के आदी हो जाते हैं, 'गम्भीर' हिन्दी साहित्यिकों के बीच बैठते-बैठते।

कम से कम मेरी पीढ़ी के हिन्दी पढ़ने वालों के भीतर उनकी शिक्षा ने यह बात तो बिठा ही दी है कि 'लोकप्रिय' पर बात करना 'सस्तापन' है। 'बाज़ारू' है। वैसे भी आज हिन्दी जनपद में साहित्येतर बातचीत ऐसे होती

है मानो वह अवान्तर-प्रसंग हो। 'हिन्दी साहित्य' का दायरा सिकुड़ता ही गया है। वहाँ आज भी 'मैं टीवी नहीं देखता', 'बम्बइया फ़िल्में बकवास होती हैं' जैसे मुहावरे ऐसे चल रहे हैं मानो वे सनातन सत्य हों।

ऐसे माहौल में रहते काम करते 'लोकप्रिय' को लेकर एक हिचक पैदा हो जाती है। 'लोकप्रिय उपन्यासों' पर मेरे इस लिखे में मेरी बरसों की 'उच्च-भ्रू' हिचक भी शामिल है।

पुस्तक-समीक्षा की पत्रिका *पुस्तक-वार्ता* के अंक-4 में वागीश शुक्ल ने 'पुस्तक और मैं' स्तम्भ में लिखा है, "जहाँ तक गम्भीर साहित्य की बात है, मेरा ख़याल हमेशा से यह रहा है कि यह नामकरण ही ऐसी कमज़ोरी को बताता है जिसके तहत रसिकों के सामने जाने से साहित्य कतराता है। हिन्दी साहित्य के सन्दर्भ में हम इसे कवि-सम्मेलन और पारिवारिक पत्रिका जैसी संस्थाओं के ह्रास के रूप में देख सकते हैं। पहले राही मासूम रज़ा की ग़ज़लें जासूसी दुनिया जैसी पत्रिका में छप सकती थीं और निराला जी की कविता के नीचे ही असली तान्त्रिक अंगूठी का विज्ञापन छप सकता था। अब हम देखते हैं कि प्रथमतः तो पत्रिका को पारिवारिक बनाने के नाम पर उसमें से साहित्य निकल जाता है, अर्थात अच्छी कविताएँ, अच्छी कहानियाँ नहीं छापी जातीं, और बाद में पत्रिका बन्द कर दी जाती है"। प्रसंगवश, ऊपर के उद्धरण में राही मासूम रज़ा का ज़िक्र आया है, तो उस क्रम में यह बात भी आती है कि राही साहब ने 'जासूसी दुनिया' के लिए छद्म नाम से जासूसी उपन्यास भी लिखे थे।

कब बच्चन की *मधुशाला*, आचार्य चतुरसेन के उपन्यास *वैशाली की नगरवधू*, *वयम् रक्षामः*, शिवानी की *स्वयंसिद्धा*, *चौदह फेरे* आदि पढ़ना 'अगम्भीर' लगने लगा याद नहीं। इन पुस्तकों की स्मृतियों के साथ 'हिन्द पॉकेट बुक्स' की 'घरेलू लाइब्रेरी योजना' का नाम जुड़ा हुआ है, जिसने हिन्दी प्रकाशन जगत में पॉकेट बुक्स छापकर क्रान्ति पैदा कर दी थी। 'घरेलू लाइब्रेरी योजना' के तहत पाँच रुपए के वीपीपी से एक-एक रुपए की छह पुस्तकें भेजी जाती थीं। पोस्टेज फ़्री होता था। इसकी सदस्य संख्या पौने छह लाख तक पहुँची थी। हर महीने औसतन अड़तीस हज़ार पैकेट भेजे जाते थे, तीन अस्थायी पोस्ट ऑफ़िस हिन्द पॉकेट बुक्स के कंपाउण्ड में 'घरेलू लाइब्रेरी योजना' के पैकेट भेजने के काम में लगे रहते थे।

'घरेलू लाइब्रेरी योजना' की आज हिन्दी में वह पीढ़ी भी चर्चा नहीं करती जो उसका 'सस्ता साहित्य' पढ़कर बड़ी हुई। उस योजना में डॉ. राधाकृष्णन से लेकर गुलशन नन्दा, कुशवाहा कान्त तक सारे लेखक घर-घर पहुँचे। जवाहर लाल नेहरू की *मेरी कहानी* और *हिन्दुस्तान की कहानी* भी हिन्दी में पहले-पहल वहीं छपी, तो टैगोर की *गीतांजलि* उसके पहले सेट का हिस्सा बनी। *झील के उस पार*, जो कि गुलशन नन्दा का उपन्यास था, जिस पर धर्मेन्द्र, मुमताज़ अभिनीत फ़िल्म उसी नाम से बनी थी, का पाँच लाख का एडीशन छपा था, जो कि बहुत दिनों तक एक रेकॉर्ड ही रहा। 'घरेलू लाइब्रेरी योजना' से कमलेश्वर, मोहन राकेश, रमेश बक्षी, *सूखा पत्ता* उपन्यास के लेखक अमरकान्त, *वंशज* उपन्यास की लेखिका मृदुला गर्ग जैसे साहित्यिक भी घर-घर पहुँचे। कर्नल रंजीत, कुशवाहा कान्त, रानू (जिनका असली नाम था आर.एच.ग्रे रानू), प्रेम वाजपेयी आदि के उपन्यास तो पहुँचे ही। अमृता प्रीतम भी ज्ञानपीठ पुरस्कार मिलने से पहले और बाद में 'हिन्द पॉकेट बुक्स' की 'स्टार' लेखिका रहीं और अगर उनको पंजाबी साहित्य का ज्ञानपीठ पुरस्कार न मिला होता तो हिन्दी के अनगिनत पाठकों के लिए यह रहस्य ही रह जाता कि अमृता प्रीतम मूलतः पंजाबी में लिखती थीं। उनकी आत्मकथा *रसीदी टिकट* की लोकप्रियता में भी 'हिन्द पॉकेट बुक्स' की 'घरेलू लाइब्रेरी योजना' का बड़ा हाथ था। उसी तरह बाद में गम्भीर साहित्य का अध्येता बनने के बाद यह बात समझ में आई कि कृश्न चंदर मूलतः उर्दू के लेखक थे। उन दिनों जैसे राजेन्द्र कुमार, शम्मी कपूर, जॉय मुखर्जी की फ़िल्मों में पहले-पहल कश्मीर के दर्शन हुए थे, तो कश्मीर की प्राकृतिक सुषमा का पहला वर्णन कृश्न चंदर की कहानियों में ही पढ़ा था जो कि 'हिन्द पॉकेट बुक्स' से छपा था। कृश्न चंदर का उपन्यास *एक गधे की आत्मकथा* जिसमें गधा प्रधान मंत्री नेहरू से मिलता है, भी 'हिन्द पॉकेट बुक्स' से ही छपा था और उनकी आत्मकथा *आधे सफ़र की पूरी कहानी* भी।

'हिन्द पॉकेट बुक्स' की 'घरेलू लाइब्रेरी योजना' ने उर्दू शायरी को भी घर-घर पहुँचाने का काम किया। *दीवान-ए-ग़ालिब* से लेकर फ़ैज़, इक़बाल, साहिर तक की शायरी छापने वाले उस सीरीज़ के संपादक थे प्रकाश पंडित। बाद में 'हिन्द पॉकेट बुक्स' के प्रकाशकों ने 'हिन्द पॉकेट बुक्स' को तो साहित्यिक कृतियों के लिए रख छोड़ा और लोकप्रिय उपन्यासों को छापने के लिए 'अभिनव पॉकेट बुक्स' शुरु की। प्रसंगवश, वेद प्रकाश शर्मा के

आरम्भिक दो उपन्यासों *भगवान नम्बर-२* और *शीशे की अयोध्या* को भी उसी प्रकाशन ने छापा था। 'राजहंस' उन रोमांटिक उपन्यासों के 'स्टार राइटर' थे जो 'अभिनव पॉकेट बुक्स' सीरीज़ से छपते थे।

प्रसंगवश, इन प्रकाशनों में पाठक को कितना महत्व दिया जाता था इसका अन्दाज़ा इस बात से भी होता है कि वेद प्रकाश शर्मा का उपन्यास *शीशे की अयोध्या* जब अभिनव पॉकेट बुक्स से छपा तो एक पाठक ने यह पत्र लिखा कि वह उपन्यास किसी और नाम से 'नीलम पॉकेट बुक्स' से छप चुका है। उसके बाद उस प्रकाशक ने 'बिकाऊ' होने के बावजूद वेद प्रकाश शर्मा को कभी नहीं छापा।

वह हिन्दी में 'पाठकों' का दौर था। उपन्यास, कथा-साहित्य के अलावा *सारिका* जैसी साहित्यिक पत्रिकाएँ थीं। *धर्मयुग*, *साप्ताहिक हिन्दुस्तान* जैसी पारिवारिक पत्रिकाएँ थीं। *पराग*, *नंदन* आदि बाल-पत्रिकाएँ थीं। समाचार साप्ताहिक *दिनमान* तो था ही। इसके अलावा, *मनोहर कहानियाँ*, *सत्यकथा* जैसी पत्रिकाओं का बड़ा पाठक-वर्ग था ही। कुल मिलाकर पाठक-प्रधान दौर की वह आख़िरी ख़ुशनुमा याद है।

अपने बचपन के दिनों में भारत-नेपाल सीमा पर स्थित छोटे से क़स्बे सीतामढ़ी के कई गाँवों में मैंने ऐसी अल्मारियाँ देखी थीं जिन पर बाक़ायदा लिखा होता था 'घरेलू लाइब्रेरी योजना'। मुझे याद है कि बाद में मिथिला के एक गाँव में बात-बात में अपनी एक मुँहबोली भाभी के मुँह से 'भोगा हुआ यथार्थ' मुहावरा सुनकर मैं चौंक उठा था क्योंकि तब तक मेरा यह मानना था कि यह 'नयी कहानी' का मुहावरा है और इसीलिए साहित्यिकों के ही काम का है। मेरा ख़याल है कि हिन्दी में पाठकों को जोड़ने का इतना बड़ा प्रयास फिर कभी हुआ नहीं और देखते ही देखते 'हिन्द पॉकेट बुक्स' और उसकी योजना इतिहास का हिस्सा बनकर रह गयी।

बॉद्रीला ने 1983 में अपने निबन्ध 'द एक्सटेसी ऑफ़ कम्युनिकेशन' में लिखा है कि "दृश्य और दर्पण का अस्तित्व नहीं रहा, बल्कि अब एक 'स्क्रीन' है और उसका तंत्र है"। मीडिया ने हिन्दी परिदृश्य को प्रभावित किया है और उसे हम सामान्य तौर पर पारिवारिक पत्रिकाओं के साथ-साथ *सारिका* जैसी प्रतिष्ठित साहित्यिक पत्रिका, *दिनमान* जैसी समाचार-पत्रिका, ताज़ा झोंके की तरह परिदृश्य पर छाए *रविवार* जैसी पत्रिकाओं के बन्द होते चले जाने के दौर के रूप में देखते हैं।

हिन्दी का परिदृश्य ख़ासा 'गम्भीर' और साहित्यिक होता चला गया। उस दौर के लोकप्रिय साहित्य के परिदृश्य पर नज़र डालना दिलचस्प रहेगा। यह देखना कि जहाँ एक ओर *मनोहर कहानियाँ* और *सत्यकथा* जैसी अपराध-कथाओं की पत्रिकाओं की पहले प्रसार संख्या कम होती गयी और अन्ततः वे भी बन्द हो गयीं। उस दौर को आमतौर पर हिन्दी के 'साहित्यिक' माहौल के वेद प्रकाश शर्मा और उसके उपन्यास *वर्दी वाला गुंडा* के दस लाख के संस्करण की घटना से जोड़कर याद किया जाता है। उन दिनों हिन्दी के साहित्यिक माहौल में एक ओर जहाँ टीवी, बाज़ार, अपसंस्कृति की चर्चा थी, तो दूसरी ओर *वर्दी वाला गुंडा* की बिक्री का रोना था।

अंग्रेज़ी में एड्गर एलन पो और आर्थर कॉनन डॉयल के लेखन से शुरु हुए माने गए जासूसी कथा-लेखन का ब्रिटिश परम्परा में बड़ा सम्मान रहा है और अमेरिकी लेखन की भी वह प्रमुख विधा रही है। उर्दू में उस विधा के एक मौलिक लेखक इब्ने सफ़ी को पटकथाकार-गीतकार जावेद अख़्तर ने नसरीन मुन्नी कबीर के साथ बातचीत की अपनी पुस्तक *सिनेमा के बारे में* बड़े अदब से याद किया है। हिन्दी की जासूसी कथा-लेखन परम्परा एक ओर अंग्रेजी से प्रभावित रही है तो दूसरी ओर उस पर उर्दू का भी प्रभाव रहा है।

समकालीन लेखकों में *वर्दी वाला गुंडा* के लेखक वेद प्रकाश शर्मा और उन्हीं के समानान्तर दिल्ली के लेखक सुरेन्द्र मोहन पाठक की चर्चा की जा सकती है। यह धारा आमतौर पर 'थ्रिलर' या 'अपराध-कथाओं' की धारा है। यह जासूसी कथा धारा से ही निकली है। पिछली सदी के आख़िरी दशक में मेरठ में वेद प्रकाश शर्मा और राज पॉकेट बुक्स, मनोज पॉकेट बुक्स, राजा पॉकेट बुक्स और उनसे जुड़े 'बड़े' लेखक सुरेन्द्र मोहन पाठक के इर्द-गिर्द मेन रोड, बुराड़ी, दिल्ली - 110084 लोकप्रिय उपन्यासों के छापने-बेचने का एक अच्छा व्यवसाय-केन्द्र बनकर उभरा। मेरठ में वेद प्रकाश शर्मा ने 'तुलसी पॉकेट बुक्स' नाम का अपना प्रकाशन-गृह ही शुरु कर दिया। उन दिनों पाठकों को याद होगा कि वेद प्रकाश शर्मा की पुस्तकों के पीछे उनकी तस्वीर छपी होती थी जिनमें वे अपने आलीशान घर के सामने लम्बी-सी कार पर कुहनी टिकाए खड़े होते थे। कहा जाता है कि उस दौर में मेरठ न सिर्फ़ प्रकाशकों का, बल्कि 'छद्म लेखकों' का भी बहुत बड़ा केन्द्र बनकर उभरा। उस विधा के कुछ और 'लेखक नाम' जो आपको

बस स्टैण्ड, रेलवे स्टेशन या पत्र-पत्रिकाओं के किसी भी स्टॉल पर सहज ही दिखाई दे जाते हैं, वे ओम प्रकाश शर्मा, परशुराम शर्मा, कुमार कश्यप, अरुण कुमार शर्मा, गोपाल शर्मा, ओम प्रभाकर, विक्की आनन्द, अनिल मोहन, केशव पंडित, पवन, प्रकाश पाराशर, अरुण अंबानी, राकेश पाठक, मोना चौधरी, रीमा मोहन आदि हैं। अलग-अलग क्षेत्रों में असंख्य ऐसे ही नाम जुड़ते चले जाते हैं।

इस विधा के लेखक हैं तो पाठक भी हैं। उन दोनों का आपसी रिश्ता है। लोकप्रिय लेखक अपने पाठकों का ख़ास ध्यान रखते हैं। अपने 'लक्ष्य पाठकों' तक पहुँचने के दिलचस्प तरीक़े ईजाद करते हैं। 'लेखक पाठक संवाद' एक ऐसा ही तरीक़ा है जिसमें लेखक अपने उपन्यासों, कथा-प्रविधि इत्यादि पर पाठकों के पत्रों के जवाब में अपनी बात रखते हैं और उपन्यासों में उसका प्रकाशन भी हो जाता है। टेलीविज़न के दर्शकों को याद होगा कि हिन्दी के आरम्भिक धारावाहिक *हमलोग* की हर कड़ी के आख़िर में अशोक कुमार दर्शकों से कथा-गुत्थी की चर्चा करते थे। आजकल हिन्दी के 'गम्भीर' प्रकाशक 'राजकमल प्रकाशन' ने 'लेखक पाठक संवाद' कार्यक्रम शुरु किया है जिसका उद्देश्य साहित्यिक माहौल की गम्भीरता को कुछ कम करना बताया जाता है।

बहरहाल, सुरेन्द्र मोहन पाठक और वेद प्रकाश शर्मा इस विधा के 'बिकाऊ' लेखकों में रहे हैं। आइए देखते हैं वे 'लेखक पाठक संवाद' की प्रविधि का इस्तेमाल किस प्रकार करते हैं। वेद प्रकाश शर्मा का एक उपन्यास है *केशव पंडित*। बाद में यह नाम तो इतना लोकप्रिय हुआ कि इस नाम से एक लेखक 'ब्राण्ड' भी बना। केशव पंडित के नाम से लिखे उपन्यास भी आज बाज़ार में उपलब्ध हैं। *केशव पंडित* उपन्यास 1986 में छपा था यानी तब जब *वर्दी वाला गुण्डा* नहीं छपा था — वेद प्रकाश शर्मा एक बड़ा 'ब्राण्ड नेम' नहीं बना था। उसमें पाठकों से संवाद क़ायम करने का उनका अन्दाज़ देखिए — "मेरे प्रेरक पाठकों, केशव पंडित हाज़िर है। इससे पूर्व प्रकाशित एक उपन्यास के कथानक से सम्बन्धित आपके पत्र मुझे निरन्तर मिल रहे हैं — आपमें से किसी को वह उपन्यास पसन्द नहीं आया है, आपकी सारी शिकायतें वाजिब हैं — उपन्यास वैसा ही लगेगा जैसा वक़्त ने मुझसे लिखवाया है — आप समझ सकते हैं कि अगर लेखक की मानसिक अवस्था ठीक न हो तो वह लिख क्या सकेगा? हालाँकि प्रचार माध्यमों से मैंने आपको पहले ही सचेत कर दिया था कि मेरे क़लम से निकलने वाले जिस अभूतपूर्व कथानक का इन्तज़ार आप ब्रेसब्री से कर रहे हैं वह सिर्फ़ और सिर्फ़ *केशव पंडित* में दिया जा रहा है, इसके बावजूद अगर आप धोखा खा गये तो इसे मेरा दुर्भाग्य ही कहा जाएगा। दरअसल हुआ यह है कि पिछले दिनों कुछ दुश्मनों ने मेरे खिलाफ़ एक साज़िश रची। लेखन क्षेत्र से मेरा नाम मिटा देना उनकी साज़िश का उद्देश्य था। मुझे यह दिखाना है कि बिकता सिर्फ़ वह लेखक है जिसे पाठक और बुकसेलर चाहें, पसन्द वे उपन्यास किये जाते हैं जिसमें लेखक अपने पढ़ने वालों को मनोरंजन का भरपूर मसाला देता है"।

(*केशव पंडित,* वेद प्रकाश शर्मा, राज पॉकेट बुक्स, दिल्ली, 1996) वेद प्रकाश शर्मा के इस 'लेखकीय' का शीर्षक है 'क्या रिवॉल्वर की नोक पर उपन्यास लिखा जा सकता है?'

उपन्यास के आख़िर में उनका नोट छपा है — "आप जानते हैं कि कानून एक जटिल विषय है और वैसा कथानक लिखना बेहद दुश्कर जैसा मैंने अपने इस उपन्यास के लिए बुना — जानने के लिए बेचैन हूँ कि मैं कितना सफल हो सका?"

क़ानून का ज्ञान अगर वेद प्रकाश शर्मा के लेखन की ताक़त रही है तो सुरेन्द्र मोहन पाठक की शक्ति रही है परिवेश की पकड़। सुरेन्द्र मोहन पाठक ने एक तरफ़ 'थ्रिलर' लिखे हैं जिसमें 'विमल सीरीज़' सबसे पॉपुलर रहा है। वैसे वे आजकल *सजीली दुनिया, छबीली दुनिया, अठरंगी दुनिया* शीर्षकों से 'जोक बुक सीरीज़' भी लिखने लगे हैं। कह सकते हैं कि इस तरह से उस विधा में और कोई लेखक इतना 'वर्सेटाइल' नहीं है। *आग का दरिया* 2002 में प्रकाशित उनका नवीनतम उपन्यास है जो कि 'विमल सीरीज़' का थ्रिलर है। प्रकाशक है बुराड़ी, दिल्ली के मनोज पॉकेट बुक्स। आइए पाठकों से संवाद बनाने की उनकी प्रविधि पर ग़ौर करते हैं —

> प्रस्तुत उपन्यास मेरी आज तक की पुस्तकाकार में प्रकाशित कुल रचनाओं के क्रम में 231वाँ है। *शेर की सवारी* तो एकाध अपवाद को छोड़कर हर किसी को बहुत पसन्द आया, इतना कि इसे 'शेर शहकार' का दर्जा दिया गया। उपन्यास के जिस प्रसंग ने मेरे समस्त पाठकों को मुग्ध कर दिया और जिसके लिए आपका लेखक बेमिसाल वाहवाही से नवाज़ा गया वो पंडित भोजराज शास्त्री का विमल के लिए आख्यान वाला था। प्रीतम पारवानी के कथनानुसार शंखनाद और घण्टियों की कसर रही तो रही वरना कथा-वाचन प्रसंग ने सत्संग का-सा समां बाँध दिया। इस सन्दर्भ में निवेदन है कि मैं हमेशा इस बात की झण्डाबरदारी करता रहा हूँ कि जासूसी उपन्यास फ़िल्मों की तरह केवल मनोरंजन का ज़रिया होते हैं लेकिन मेरे हर पाठक का मानना है कि शास्त्री जी वाले प्रसंग ने मेरे इस वक्तव्य को पूरी तरह झुठला दिया है। मुझे बहुत खुशी है कि मेरे सुबुद्ध पाठक ऐसी बातों का — जो जासूसी उपन्यासों में ज़रूरी तक नहीं समझी जातीं — नोटिस लेते हैं; ऐसी बातों की नोटिस इसलिए भी ज़रूरी है क्योंकि यही बातें, यही ख़ास फुंदने, लेखन के क्षेत्र में गधों घोड़ों में फ़र्क़ पहचानने के काम आते हैं।

आगे वे पाठकों की इस शिकायत पर कि उनके उपन्यासों में कुछ ख़ामियाँ रह गयी हैं, का जवाब देते हुए लिखते हैं — "ताक़ीद रहे कि जासूसी उपन्यास की स्क्रिप्ट तैयार होते ही सीधा प्रिंटर के पास जाती है और पुस्तक बनकर पाठक के पास पहुँचती है। तभी दो से तीन महीने में एक उपन्यास छपना मुमकिन हो पाता है अन्यथा साल में एक ही छपे। अब आप खुद फ़ैसला कीजिए कि आपको क्या कुबूल होगा! कोई छोटी-मोटी विसंगति समाहित अपने पसन्दीदा लेखक के साल में चार नये उपन्यास या ठोंक-बजाकर तैयार की गयी सालाना पेशकश! ताक़ीद रहे कि ग़लती ठोक-बजा के तैयार की गयी कथित सालाना पेशकश में भी हो सकती है"। (*आग का दरिया*, सुरेन्द्र मोहन पाठक, मनोज पब्लिकेशंस, मेन रोड, बुराड़ी, दिल्ली-110084).

सुरेन्द्र मोहन पाठक के एक अन्य उपन्यास *छह करोड़ का मुर्दा* में छपे एक पाठक श्री गौरीशंकर भारती के पत्र की बानगी देखिए — "उपन्यास के टाइटल पर भूत प्रेतों सम्बन्धी मैटर छपा देखकर मन भीतर ही भीतर आशंकित था कि आप भी कहीं सस्ते लेखकों की श्रेणी में तो नहीं उतर आये। भूत प्रेत नहीं तो क़त्ल को कोई वैज्ञानिक करामात ही न बता दें। पर खुशी हुई कि आपने हमें धोखा नहीं दिया और सारगर्भित, मान्य तथ्यों को ही उपन्यास के समापन का आधार बनाया।" (*छह करोड़ का मुर्दा*, सुरेन्द्र मोहन पाठक, मनोज पब्लिकेशंस)। पाठक गौरीशंकर भारती ने जहाँ उपन्यास की तारीफ़ की है, हालाँकि उसमें उपन्यास के 'सस्ते लेखक' के लिखे जैसा होने की शंका भी शामिल है, तो दूसरी ओर उसी के साथ धुलिया के एक पाठक विजय वानखेड़े का पत्र भी छपा है जिन्होंने उपन्यास की निन्दा करने में कोई कोताही नहीं बरती है - "विश्वास नहीं होता यह उपन्यास आपने लिखा है। जैसे आपका हर उपन्यास एक ही बैठक में पठनीय होता है, वैसी कोई बात इसमें नज़र न आयी। मनोरंजन के नाम पर यह कोरा है। उपन्यास का एक भी पात्र खुलकर सामने नहीं आया है। कोई सनसनी नहीं, कोई रोमांच नहीं,

कोई ड्रामा नहीं"। (*छह करोड़ का मुर्दा*, मनोज पब्लिकेशंस)। उपरोक्त पत्र सुरेन्द्र मोहन पाठक के उपन्यास *कोई गवाह नहीं* को पढ़कर लिखे गये हैं।

वेद प्रकाश शर्मा और सुरेन्द्र मोहन पाठक ही नहीं, इस विधा के अन्य लेखक भी 'सीरीज़' लिखने में आस्था रखते हैं। 'विक्रान्त सीरीज़', 'जगत सीरीज़', 'सुनील सीरीज़' आदि कुछ प्रमुख सीरीज़ हैं। यह कुछ इस तरह है कि लेखक एक 'लार्जर दैन लाइफ़' चरित्र गढ़ता है, उसे एक नाम देता है और फिर उसके कारनामों का समां बाँधकर पाठकों को आकर्षित करता है। फिर कथा-श्रृंखला बनती चली जाती है। उदाहरण के लिए — "छह करोड़ का मुर्दा 'विमल सीरीज़ का 31वाँ शाहकार' है। उस 'विमल सीरीज़' का परिचय आगे बढ़ाते हुए उपन्यास की विज्ञप्ति में लिखा है, "'विमल सीरीज़' एक ऐसा करिश्मा है जो सालों-साल के इन्तजार के बाद कभी एक बार वाकया होता है। ग़ैरमामूली किरदार, नाक़ाबिलेबर्दाश्त सस्पेंस, करिश्माई वाकयात और चुम्बकीय चरित्र चित्रण की जुगलबन्दी से पैदा होने वाले हैरतबरपा अहसास का नाम 'विमल सीरीज़' है"। (*छह करोड़ का मुर्दा* उपन्यास से)

उसी उपन्यास की विज्ञप्ति में विमल का परिचय देते हुए लिखा है - "हरदिल अज़ीज़ सरदार सुरेन्द्र सिंह सोहल जेल ब्रेकर उर्फ़ विमल कुमार खन्ना डोमेस्टिक सर्वेंट उर्फ़ गिरीश माथुर मर्डर सस्पेक्ट उर्फ़ बनवारी लाल ताँगेवाला उर्फ़ रमेश कुमार शर्मा कार ड्राईवर उर्फ़ कैलाश मल्होत्रा कैसीनो क्लर्क उर्फ़ वसन्त कुमार मोटर मैकेनिक उर्फ़ नितिन मेहता रिसर्च स्कॉलर उर्फ़ कालीचरण मवाली उर्फ़ पी.एन. घड़ीवाला सौदागर उर्फ़ अरविन्द कुमार व्हाईट कॉलर एम्पलाई उर्फ़ राजा गजेन्द्र सिंह एनआरआई का नवीनतम कारनामा"। (*छह करोड़ का मुर्दा* उपन्यास)। विमल के इतने विविध रूप जहाँ उसके चरित्र को मिथकीय विस्तार देते प्रतीत होते हैं वहीं विविध पाठक-वर्ग का संकेत देते लगते हैं और कथारूढ़ियों का भी।

एक दिलचस्प चीज़ जो हिन्दी के 'सड़क साहित्य' की विधा 'थ्रिलर' के अध्ययन में दिखाई देती है जो 'विक्रान्त सीरीज़' से ही सम्बन्धित है कि जब शीतयुद्ध का दौर चल रहा था तो अन्तर्राष्ट्रीय जासूसों का दल होता था जिसमें भारत और रूस के जासूस मिलकर काम करते थे। रूसी जासूस का नाम था बागारोफ। उस तरह के उपन्यासों के लेखक के रूप में 'जनप्रिय' उपन्यासकार ओम प्रकाश शर्मा का नाम याद आता है। हर बार भारत और रूस के जासूस मिलकर अमेरिका के लिए मुश्किलें खड़ी करते रहते थे। 'विक्रान्त सीरीज़' एक ऐसी सीरीज़ रही जिसमें इस विधा के लेखकों के लिए हाथ आज़माना अपनी योग्यता दिखाने जैसा था।

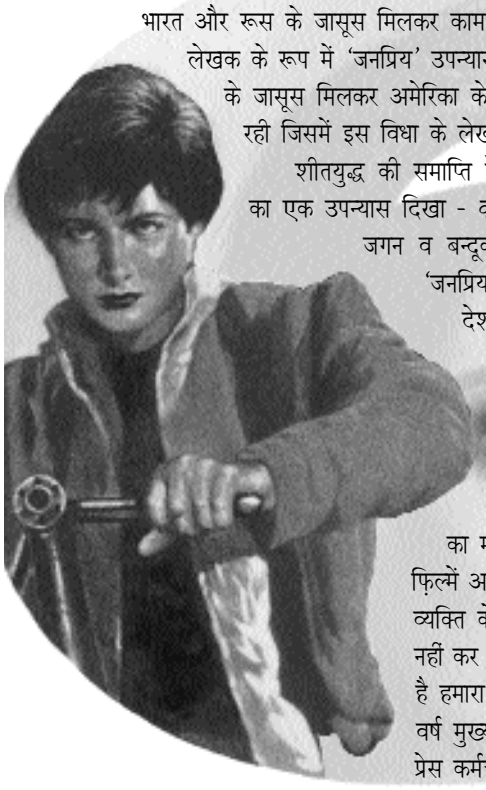

शीतयुद्ध की समाप्ति ने उस 'फ़ार्मूले' का अन्त कर दिया। बहुत दिनों बाद ओमप्रकाश शर्मा का एक उपन्यास दिखा - *वह पाकिस्तानी जासूस थी*। सीरीज़ भी बदली हुई थी — 'जगत, गोपाली, जगन व बन्दूक सिंह सीरीज़'। अन्तर्राष्ट्रीय जासूसों की बड़ी-बड़ी कथाएँ कहने वाले 'जनप्रिय' लेखक के जासूस बेचारे राजस्थान की सीमाओं पर भटक रहे थे। देशभक्ति एक बड़ा 'फ़ार्मूला' बनकर उभरा। अपराध-कथाओं की इस धारा का यह वरिष्ठ लेखक अपनी विधा के वर्तमान परिदृश्य से कुछ निराश ही दिखता है — "यह मेरा चार सौ इकतीसवाँ उपन्यास है ऐतिहासिक, सामाजिक और जासूसी उपन्यासों को मिलाकर। परन्तु विशेष रूप से जासूसी उपन्यासों के बारे में आपसे कुछ कहना है। जो अन्य लेखक लिख रहे हैं, मैं उनसे सहमत नहीं हूँ। जासूसी उपन्यास तो बुद्धि चातुर्य का मनोरंजन है। उपन्यासों को फ़िल्मों से प्रभावित नहीं होना चाहिए। अधिकांश फ़िल्में अमेरिकी फ़िल्मों की कहानी से मिलती है। ह्यूस्टन और डलास के गुण्डों से। व्यक्ति के जीवन का मोल होता है और एक आदमी दस आदमियों से मारा-मारी नहीं कर सकता। आग्नेय हथियारों का प्रचार भारतीय परम्परा के विरुद्ध है। अंडरवर्ल्ड है हमारा पड़ोसी देश और माफ़िया सरगना हमारे राजनीतिज्ञ हैं। एक एक्ट्रेस कुछ वर्ष मुख्यमंत्री रही और उसके पास से अरबों रुपए बरामद हुए। नोट छापने वाले प्रेस कर्मचारियों तथा बैंक कर्मचारियों के अतिरिक्त इतना धन भारत के दो सौ कुछ

घरानों ने ही देखा होगा। जासूसी उपन्यासों को उस मज़ाक से भी बचना चाहिए — एक व्यक्ति ने जासूसी उपन्यास खरीदा। पढ़ना शुरु किया तो पहले ही पृष्ठ पर छह हत्याएँ हो गयीं, अधिक भी हो सकती थीं परन्तु रिवॉल्वर के चेम्बर में छह ही बुलेट थे। समाचार छपा कि एक व्यक्ति ने स्त्री की हत्या करके उसे तन्दूर में जलाने की चेष्टा की, तलाशी में उसके घर से हिन्दी उपन्यास बरामद हुआ जिसमें ऐसी तरक़ीब लिखी हुई थी। उस लेखक पर सौ बार लानत, जासूसी उपन्यासों को इस आरोप से मुक्त होना चाहिए कि वह अपराध प्रचारक हैं। धन्यवाद।" (*वह पाकिस्तानी जासूस थी*, ओम प्रकाश शर्मा)।

यद्यपि 'पाठकों से' के स्तम्भ में तन्दूर में जलाने के प्रसंग में यह स्पष्ट नहीं है कि वह कौन-सा 'हिन्दी उपन्यास' बरामद हुआ पर यह लम्बा उद्धरण अपने आप में जासूसी कथा धारा के पतन पर आँसू बहाता भी लगता है, उस विधा के नुक़्ते सुझाता भी लगता है और कुछ-कुछ सुधारवादी भी। बहरहाल, कथन में लेखक का भरपूर अनुभव झलकता है।

'विक्रान्त सीरीज़' में भी शुरुआती हाथ आज़माने वाले वेद प्रकाश शर्मा के नवीनतम उपन्यास *ट्रिक* में भी कथानक हाल ही की अमेरिकी आतंकवादी घटनाएँ, अफ़ग़ान युद्ध के रास्ते भारत-पाकिस्तान की सरहद पर आ जाता है। यहाँ भी 'ब्राण्ड देशभक्ति' है। उपन्यास में एक जगह संवाद आता हैः

> "हैरी।" वह बहुत धीरे से बोला — "मामला हमारे राष्ट्र की सुरक्षा का है।"
>
> "राष्ट्र की सुरक्षा?" सजग हो गया लड़का। एक मात्र यही तो थी उसकी कमज़ोरी।
>
> (पृ. 18, *ट्रिक*, वेद प्रकाश शर्मा, तुलसी पॉकेट बुक्स, देहली रोड, मेरठ)।

'ब्राण्ड देशभक्ति' का जोश लेखक में इतना ज़्यादा है कि आगे एक जगह आता है — "इस रुमाल पर मुल्क के अनेक सीक्रेट्स लिखे हैं। ये गुण्डे रूस के एक जासूस के लिए काम कर रहे हैं। ये लोग इस रुमाल को हासिल करना चाहते हैं। अगर ये उनके हाथ लग गया तो हमारे देश को भारी नुक़सान उठाना पड़ेगा"। आप हैरत में पड़ जाएँगे रूस के जासूसों को भारत में पाकर। भारत-रूस की दोस्ती जासूसी कहानियों से भी तो विदा ले चुकी है — अब 'इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के युग में उपन्यास-जगत का परचम फहराए रखने वाले' वेद प्रकाश शर्मा के उपन्यास में भारत-रूस के दुश्मन जासूस आपको मिल जायेंगे। यह उद्धरण भी उनके उपन्यास *ट्रिक* का ही है।

ट्रिक उपन्यास पाठकों से यह सवाल पूछकर समाप्त होता है कि आतंकवादियों को जेल में डालकर मुक़दमा चलाना चाहिए या वह करना चाहिए जो विकास ने किया। प्रसंगवश, वेद प्रकाश शर्मा के एक 'लोकप्रिय' सीरीज़ 'विकास सीरीज़' का उपन्यास है *ट्रिक*। आतंकवाद की लड़ाई में अमेरिका का साथ देने की होड़ में जल्दबाज़ी में रूस को ही बड़ा शत्रु मान लिया गया है — शायद इसलिए कि पाकिस्तान का नाम लेने से कहीं यह न मान लिया जाये कि वेद प्रकाश शर्मा जैसा अब तक का सबसे विख्यात लोकप्रिय उपन्यासकार भी दूसरे छोटे-मोटे लेखकों की तरह सरहद पर अपने पात्रों को टहलाता फिर रहा है। लोग यह मान सकते हैं कि वह उनमें से किसी से प्रभावित हो रहा है। ऊपर उद्धृत ओम प्रकाश शर्मा के उपन्यास *वह पाकिस्तानी जासूस थी* में शत्रु पाकिस्तान है तो *ट्रिक* के प्लॉट में शत्रु रूस। यह दोनों की कथा में भिन्नता का नुक़्ता है।

ट्रिक उपन्यास के अन्त में एक विज्ञापन भी छपा है जो करिश्माई लेखक वेद प्रकाश शर्मा के अपने कथा-धारा में महत्व का परिचय देता है — "वेद प्रकाश शर्मा द्वारा आशीर्वाद प्राप्त लेखक केशव शर्मा का नया उपन्यास 'केशव पण्डित का मायाजाल'।"

पाठकों से सीधा संवाद बनाये रखने के इन तरीक़ों के अलावा 'इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के इस युग में' और भी नये-नये तरीक़े ईजाद किये जाते हैं, अपनाये जाते हैं। मेरठ के एक और पुराने लेखक हैं परशुराम शर्मा। देहली रोड, मेरठ के 'माया पॉकेट बुक्स' के लिए वे आजकल 'लवली सीरीज़' लिख रहे हैं। लवली सीरीज़ के दो सौ पचास-साठ पृष्ठों की पुस्तक में क्या-क्या होता है, देखते हैं — *खिलाड़ी नम्बर वन* (मुकम्मल नॉवल), *डरपोकः* एक डरपोक आदमी की कहानी, *साथ-साथः* जज़्बाती कहानी, *बुलबुलः* बुलबुल के कारनामे, *एक अचम्भाः* मर्डर मिस्ट्री, *शेर का बापः* क़िस्तवार नॉवल, *मुर्दे का फोनः* एक ब्लैक मेलर की कहानी, *मेहनत रंग लाईः* एक चोर की कहानी, *तेरे बिन भी क्या मरनाः* एक क़ैदी की कहानी, *कोमाः* क़िस्तवार नॉवेल, *लवली खिलाड़ी नम्बर वनः* परशुराम शर्मा, माया पॉकेट बुक्स, देहली रोड, मेरठ।

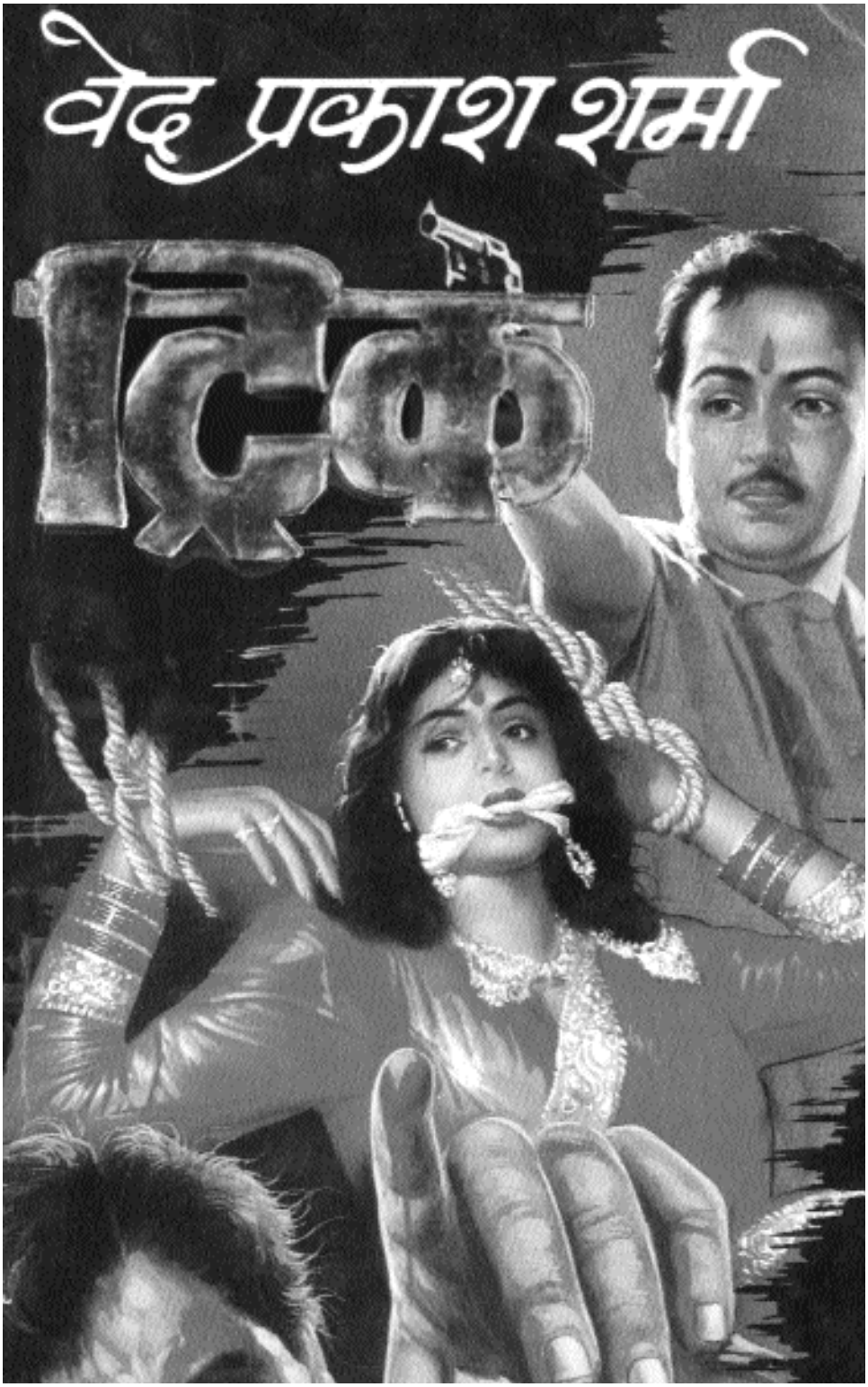
वेद प्रकाश शर्मा
वर्दी

आप देखेंगे कि यह एक तरह से 'सोनीपत के पचरंगा' अचार जैसा है। यूँ लगता है जैसे विभिन्न लोकप्रिय कथा-धाराओं का एक गुलदस्ता जैसा तैयार किया जा रहा है — पाठकों को एक पैकेज दिया जा रहा है। कई तरह के फ़ार्मूले, प्लॉट एक साथ परोसे जा रहे हैं। कुछ-कुछ टेलीविज़न के उन धारावाहिकों की तरह भी जिनमें हर एपीसोड में अलग- अलग कहानी दिखाई जाती है। यहाँ एक लोकप्रिय माध्यम टेलीविज़न के प्रभाव में पुस्तक की कल्पना की जा रही है। जासूसी, थ्रिलर आदि विधाओं का एक 'लोकप्रिय' लेखक कई विधाओं में हाथ आज़माकर अपनी विविधता दिखा रहा है। 'लवली टॉप टेन सीरीज़' लिख रहा है।

'लवली टॉप टेन सीरीज़' में एक प्रतियोगिता भी है — कौन बनेगा करोड़पति? जिसमें कहानियों के सही क्रम बनाने पर पुरस्कार का प्रावधान है। आइए इस सीरीज़ का लेखकीय देखते हैं — शीर्षक है — 'स्वागत'।

> लवली टॉप टेन सीरीज़ के प्लेटफ़ॉर्म पर मैं परशुराम शर्मा उन सब लोगों का स्वागत करता हूँ जो लवली को आन्दोलन की शक्ल देने में मेरे साथ-साथ आ खड़े हुए हैं। लवली के प्रशंसकों की कुछ फ़रमाइशें, कुछ मशवरे आये हैं। इसलिए उन पर ग़ौर करते हुए कुछ मशवरे क़ुबूल भी कर लिए गये हैं। मसलन लवली के हर अंक में एक मुकम्मल उपन्यास ही प्रकाशित हो जो भले ही कम पृष्ठों का हो लेकिन हो असरदार और ख़ूबसूरत। अधिक पृष्ठों वाले मोटे उपन्यासों की भरमार है और पाठकों को इतने सारे पृष्ठ पढ़कर भी कुछ हासिल नहीं होता। इनमें से अधिकांश में तो नंगापन भरा पड़ा है जो हरगिज़ हरगिज़ परिवार में पठनीय नहीं है। पॉकेट बुक्स में उपन्यासों की निरन्तर घटती सेल को हमारा ट्रेड टीवी के बढ़ते प्रभाव के कारण समझता है — जबकि बात ऐसी है नहीं। अगर बात ऐसी होती तो विदेशों में अमेरिका इंगलैण्ड फ़्रांस वग़ैरह में उपन्यासों का प्रकाशन तो अब तक ठप्प हो गया होता क्योंकि वहाँ का टीवी मीडिया तो हमसे बहुत आगे हैं लेकिन वहाँ का ट्रेड अब भी सलामत है। यह अलग बात है कि समय के साथ लेखन में परिवर्तन जरूर आ गया है। असल में हमारे यहाँ भी परिवर्तन की धारा बह रही है। दिलचस्प बात यह है कि हमारे लेखक बन्धुओं ने टीवी के हमले से मुक़ाबला करने के लिए यही बेहतर सोचा कि क्योंकि टीवी में नंगापन नहीं दिखाया जाता इसलिए अगर हम बोल्ड सीन लिखें तो पाठक हमारा दीवाना हो जायेगा। यह घटती सेल की बौखलाहट का नतीजा था। और यह नहीं सोचा कि ऐसे लेखन से पाठक हमें घर की दहलीज़ से बाहर धकेल देगा। जो चीज़ छुपकर देखी या पढ़ी जाये उसकी उम्र बहुत छोटी होती है। इसी भीड़भाड़ में मैंने लवली का तजुर्बा कर डाला। (लवली खिलाड़ी नम्बर वन, माया पॉकेट बुक्स, देहली रोड, मेरठ, 2001)

'लवली' सीरीज़ में लेखक की जगह लिखा है: 'डायरेक्टर परशुराम शर्मा'। पुरानी विधा का एक सफल लेखक नये बाज़ार की तलाश में अपनी पहचान बदल रहा है। ऊपर लम्बे उद्धरण में टीवी के हमले से मुक़ाबले की बात आती है तो दूसरी उसी किताब में यह शुभ समाचार भी छपा है: "लवली में प्रकाशित बुलबुल की कहानी पर आधारित टीवी धारावाहिक का निर्माण प्रारम्भ"। कुल मिलाकर बदले हुए पाठक-वर्ग के मुताबिक़ नयी पैकेजिंग चल रही है। टेलीविज़न माध्यम से होड़ चल रही है।

'लवली सीरीज़' की क़ीमत है 'पच्चीस रुपए मात्र'। यही क़ीमत मेरठ के 'स्टार' लेखक वेदप्रकाश शर्मा के नवीनतम उपन्यास *ट्रिक* की है, सुरेन्द्र मोहन पाठक के उपन्यास *छह करोड़ का मुर्दा* की क़ीमत 'बीस रुपए मात्र'

है। 'जनप्रिय' लेखक ओम प्रकाश शर्मा के उपन्यास *वह पाकिस्तानी जासूस थी* की क़ीमत भी 'बीस रुपए मात्र' है, पर वह आपको पन्द्रह रुपए में भी मिल जाएगी। उसकी पृष्ठ संख्या भी कम है। इतनी कम क़ीमत में मोटा उपन्यास भी उसे ख़रीदकर पढ़ने के लिए आकर्षित करता है।

हालाँकि आज इन लोकप्रिय उपन्यासों के प्रकाशक राज पॉकेट बुक्स, मनोज बुक्स आदि सिर्फ़ उपन्यासों के सहारे नहीं चल रहे हैं। वे कॉमिक्स छाप रहे हैं, *विदुर नीति*, *क़िस्सा हातिमताई* छाप रहे हैं। मेरठ का तुलसी पॉकेट बुक्स भी अब केवल उपन्यासों के सहारे नहीं चल रहा है।

'टेलीविज़न माध्यम' ने हिन्दी पाठकों को ग्रस लिया है — यह कहना एक सरलीकरण ही होगा। 2002 के नैशनल रीडरशिप सर्वे के मुताबिक़ पाठकों का दायरा पिछले दो वर्षों में एक सौ तिरेसठ मिलियन से बढ़कर एक सौ अस्सी मिलियन हो गया है, जिसमें ज़्यादातर हिन्दी भाषी क्षेत्रों में बढ़ा है। हालाँकि पत्रिकाओं का पाठक-वर्ग प्रभावित हुआ है, पर हिन्दी के अख़बारों की प्रसार संख्या बढ़ी है ('हिन्दी मेक्स न्यूज़', मृणाल पाण्डे, *हिन्दुस्तान टाइम्स*, 27 जून, 2002)। 'माध्यम' के बावजूद यह पाठक-वर्ग है।

'हिन्द पाकेट बुक्स' की घरेलू लाइब्रेरी योजना का मुख्य आकर्षण उसकी कम क़ीमत रहा। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उसने एक साझा पाठक-वर्ग तैयार किया — एक ऐसा पाठक-वर्ग जो 'गम्भीर-अगम्भीर' साहित्य समान भाव से पढ़ता था। हिन्दी परिसर को दिनोंदिन गम्भीर बनाने के क्रम में हमने हिन्दी 'लोकप्रिय स्पेस' को ख़त्म किया है, पाठक-वर्ग गँवाया है। सारी बहसें अकादमिक 'स्पेस' में ही हो रही हैं।

"बाज़ार के दबाव में जासूसी उपन्यासों का वह शान्तिप्रिय जासूस जो अपराध सुलझाता था, अब एक मनोविक्षिप्त, हिंसक व्यक्ति में बदल चुका है। जासूस अपराधी लगने लगे हैं। इन लेखकों का जासूसी लेखन की यशस्वी परम्परा से कोई लेना-देना नहीं है"। (*ट्वेण्टी फ़ोर कनवर्सेशंस विद बोर्ख़ेज़*, बोर्ख़ेज़, लसॉक्स पब्लिशर्स, 1984)। ऊपर विवेचित लेखकों की धारा को हिन्दी में अपराध कथा लेखन की धारा कहा जा सकता है। वही जिसके वर्चस्व पर महान इस्पहानी लेखक बोर्ख़ेज़ ऊपर चिन्तित दिखाई दे रहे हैं। साझा पाठकों के दौर के बाद हिन्दी के लोकप्रिय उपन्यासों की धारा में भी यही विधा बढ़ी।

अपराध कथाओं की इस धारा की बिक्री को अगर एक ओर टेलीविज़न ने प्रभावित किया है, जैसा कि ऊपर एक उद्धरण में परशुराम शर्मा कहते दिखाई देते हैं, तो दूसरी ओर 'सड़क लाइब्रेरी' के नेटवर्क ने। इन पुस्तकों को किराए पर दिए और लेकर पढ़े जाने का चलन है। उत्तर भारत के शहरों में गली-मुहल्ले के नुक्कड़ पर ऐसे 'सड़क पुस्तकालय' दिखाई दे जाते हैं जहाँ आप किराए पर पुस्तक लेकर पढ़ सकते हैं। इन पुस्तकों के विक्रेता ख़रीदारों को यह सुविधा भी देते हैं कि आप किताब ख़रीदने के बाद अगर चाहें तो उसे बदलकर अगले दिन नया दूसरा उपन्यास भी ले सकते हैं। इस पाठक-वर्ग और इन पुस्तकालयों के तंत्र के स्वतंत्र अध्ययन की आवश्यकता है। 'सड़क पुस्तकालय' या 'नुक्कड़ पुस्तकालय' ने इन उपन्यासों की बिक्री को कितना प्रभावित किया है इसका अन्दाज़ा 'लवली सीरीज़' में छपी 'क़ानूनी चेतावनी' को पढ़कर लगाया जा सकता है -- 'लवली को ख़रीदकर ही पढ़ें — किराए पर देने पर क़ानूनी कार्रवाई होगी' (*लवली खिलाड़ी नम्बर वन* से)।

'मात्र मनोरंजन' के उद्देश्य से लिखे गये इन उपन्यासों से नाक-भौं सिंकोड़ने की बजाय अगर हम उसका अध्ययन मनोरंजन के एक 'माध्यम' के रूप में करें तो एक रास्ता निकल सकता है। या आज 'टेलीविज़न यथार्थ' के इस दौर में जबकि यथार्थ दृश्य में तब्दील होता जा रहा है — क्या पता उनसे कुछ 'अलग' इसमें दिख जाये, कुछ ऐसा यथार्थ जिसे जानना रह गया हो। जब सारा यथार्थ 'फ़ॉर्मूला' लगने लगा हो तो शायद 'फ़ॉर्मूले' में ही कुछ 'यथार्थ' दिखे।

संदर्भ

'घरेलू लाइब्रेरी योजना' सम्बन्धी जानकारी 'हिंद पॉकेट बुक्स' में छब्बीस वर्ष तक प्रकाशन का काम देखने वाले श्री सोहनलाल शैली से बातचीत पर आधारित है।